Chapter बीस

बलि महाराज द्वारा ब्रह्माण्ड समर्पण

बीसवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है : यह जानते हुए भी कि वामनदेव उन्हें ठग रहे हैं, बलि महाराज ने दान में अपना सर्वस्व भगवान् को दे दिया। वामनदेव ने अपने शरीर को विस्तीर्ण करके भगवान् विष्णु जैसा विराट रूप धारण कर लिया।

शुक्राचार्य का शिक्षाप्रद उपदेश सुनकर बलि महाराज सोच में पड़ गये। चूँकि गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह धर्म, अर्थ तथा काम विषयक सिद्धान्तों का पालन करे अतएव बलि महाराज को यह अनुचित लगा कि वे ब्रह्मचारी को दिया गया वचन वापस ले लें। ब्रह्मचारी को दिये गये वचन को पूरा न करना या झूठ बोलना कभी उचित नहीं होता क्योंकि झूठ बोलना अत्यन्त पापमय कार्य है। हर व्यक्ति को चाहिए कि झूठ बोलने के पापपूर्ण फलों से भयभीत रहे क्योंकि पृथ्वी माता पापमय झूठ बोलने वाले का भार तक सहन नहीं कर सकती। साम्राज्य का विस्तार करना क्षणिक है और यदि ऐसे विस्तार से प्रजा को कोई लाभ नहीं होता तो वह निरर्थक है। प्राचीन काल में सभी बड़े-बड़े राजा तथा सम्राट अपने राज्यों का विस्तार प्रजा के हित को ध्यान में रखकर करते थे। निस्सन्देह, जनता के लाभ के लिए किये जाने वाले ऐसे कार्यों में व्यस्त रहते हुए उत्कृष्ट व्यक्तियों को कभी-कभी अपना जीवन तक बलिदान करना पड़ा था। ऐसा कहा जाता है कि जिसके कार्य यशस्वी होते हैं वह कभी मरता नहीं, अमर हो जाता है। अतएव यश ही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए और यदि किसी को सत्कीर्ति के लिए दरिद्र भी बनना पड़े तो इसमें कोई हानि नहीं है। बलि महाराज ने सोचा कि चाहे ये ब्रह्मचारी भगवान् वामनदेव विष्णु ही क्यों न हों और चाहे भगवान् उसका दान लेकर उसे बन्दी ही क्यों न बना लें वह उनसे द्वेष नहीं करेगा। इन सब बातों पर विचार करके अन्ततः बलि महाराज ने उन्हें अपना सर्वस्व दान में दे दिया।

तब वामनदेव ने तुरन्त विराट रूप में अपना विस्तार कर लिया। उनकी कृपा से बलि महाराज देख सके कि भगवान् सर्वव्यापी हैं और उनके शरीर में सब कुछ स्थित है। वे भगवान् वामनदेव का दर्शन परम विष्णु के रूप में कर सके जो किरीट, पीतवस्त्र, श्रीवत्स चिह्न, कौस्तुभ मणि, फूलों की माला तथा आभूषण धारण किये हुए थे, जो उनके सारे शरीर को सजाए हुए थे। भगवान् ने धीरे-धीरे सारे जगती तल को और फिर अपने शरीर का विस्तार करके सारे आकाश को आच्छादित कर लिया। उन्होंने अपने हाथों से सारी दिशाएँ घेर लीं और अपने द्वितीय पग से उन्होंने सारे ऊर्ध्वलोकों को आच्छादित कर लिया। इस तरह ऐसा कोई रिक्त स्थान न बचा जहाँ वे अपना तीसरा पग रख सकते।

श्रीशुक उवाच

बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ।

तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; बलिः—महाराज बलि ने; एवम्—इस प्रकार; गृह-पतिः—गृहस्थी के स्वामी, यद्यपि पुरोहितों द्वारा मार्गदर्शित; कुल-आचार्येण—पारिवारिक गुरु के द्वारा; भाषितः—सम्बोधित किया गया; तूष्णीम्—मौन; भूत्वा—होकर; क्षणम्—एक क्षण के लिए; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); उवाच—कहा; अवहितः—पूर्ण विचार-विमर्श करने के बाद; गुरुम्—अपने गुरु से।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित! जब बलि महाराज को उनके गुरु एवं कुलपुरोहित शुक्राचार्य ने इस प्रकार सलाह दी तो वे कुछ समय तक चुप रहे और फिर पूर्ण विचार-विमर्श के बाद अपने गुरु से इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने टिप्पणी की है कि बलि महाराज इस आलोचनात्मक बिन्दु में मौन रहे। वे अपने गुरु शुक्राचार्य के आदेश की अवज्ञा कैसे कर सकते थे? बलि महाराज जैसे गम्भीर व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह अपने गुरु के आदेशों का तुरन्त पालन करे जैसा उन्होंने परामर्श दिया था। किन्तु बलि महाराज ने यह भी विचार किया कि शुक्राचार्य को अब गुरु स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वे गुरु के कर्तव्य से विमुख हुए हैं। शास्त्रों के अनुसार गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने शिष्य को भगवद्धाम वापस ले जाये। यदि वह ऐसा नहीं कर सकता और उल्टे, अपने शिष्य के भगवद्धाम वापस जाने में बाधा पहुँचाता है, तो वह गुरु नहीं रह सकता। *गुरुर्न स स्यात्* (*भागवत* ५.५.१८)। यदि कोई अपने शिष्य को कृष्णभावनामृत में अग्रसर होने में सक्षम नहीं बना सकता तो उसे गुरु नहीं बनना चाहिए। जीवन का लक्ष्य कृष्ण-भक्त बनना है, जिससे भवबन्धन से छुटकारा प्राप्त किया जा सके (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)। गुरु कृष्णभावनामृत को विकसित करके शिष्य को इस अवस्था को प्राप्त करने में सहायता देता है। अब शुक्राचार्य ने बलि महाराज को सलाह दी थी कि वे वामनदेव को दिये गये वचन से मुकर जाँए। अतएव ऐसी परिस्थिति में बलि महाराज ने सोचा कि यदि वे अपने गुरु के आदेश की अवज्ञा कर दें तो इसमें कोई दोष नहीं होगा। उन्होंने इस विषय पर तर्क-वितर्क किया कि क्या वे अपने गुरु के आदेश को अस्वीकार कर दें या स्वतंत्र होकर भगवान् को प्रसन्न करने के लिए चाहे जो भी करें? इसमें उन्हें कुछ समय लगा। इसीलिए कहा गया है—*तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम्।* इस बिन्दु पर तर्क-वितर्क करके उन्होंने निर्णय लिया कि प्रत्येक दशा में भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना है भले ही इसमें गुरु-उपदेश की अवहेलना क्यों न करनी पड़े।

जिसे गुरु माना जाये, किन्तु यदि वह विष्णु-भक्ति के सिद्धान्त के विरुद्ध जाता हो तो उसे गुरु नहीं स्वीकार किया जा सकता। यदि किसी ने भूल से ऐसे गुरु को स्वीकार किया हो तो उसे उसको त्याग देना चाहिए। ऐसे गुरु का वर्णन इस प्रकार हुआ है (*महाभारत, उद्योग पर्व* १७९.२५)—

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।

उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥

श्रील जीव गोस्वामी ने सलाह दी है कि इस प्रकार के व्यर्थ गुरु या कुलगुरु को त्याग देना चाहिए और सही प्रामाणिक गुरु को स्वीकार करना चाहिए।

षट्कर्मनिपुणो विप्रो मन्त्रतन्त्रविशारदः ।

अवैष्णवो गुरुर्न स्याद् वैष्णवः श्वपचो गुरुः ॥

''एक विद्वान ब्राह्मण वैदिक ज्ञान के समस्त विषयों में पटु होते हुए भी गुरु होने के योग्य नहीं है यदि वह वैष्णव नहीं है, किन्तु यदि निम्नकुल में उत्पन्न व्यक्ति वैष्णव है, तो वह गुरु बन सकता है।'' (*पद्मपुराण*)

श्रीबलिरुवाच
सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ।
अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २॥

शब्दार्थ

श्री-बलिः उवाच—बलि महाराज ने कहा; सत्यम्—सत्य है; भगवता—आपके द्वारा; प्रोक्तम्—कहा गया; धर्मः—धर्म; अयम्—यह; गृहमेधिनाम्—विशेष रूप से गृहस्थों के लिए; अर्थम्—आर्थिक विकास; कामम्—इन्द्रियतृप्ति; यशः वृत्तिम्—यश एवं जीविका का साधन; यः—जो धर्म; न—नहीं; बाधेत—बाधा पहुँचाता है; कर्हिचित्—किसी समय।

बलि महाराज ने कहा : जैसा कि आप कह चुके हैं, जो धर्म किसी के आर्थिक विकास, इन्द्रियतृप्ति, यश तथा जीविका के साधन में बाधक नहीं होता वही गृहस्थ का असली धर्म है। मैं भी सोचता हूँ कि यही धर्म सही है।

तात्पर्य : बलि महाराज द्वारा शुक्राचार्य को दिया गया गम्भीर उत्तर भावपूर्ण है। शुक्राचार्य ने इस बात पर बल दिया था कि मनुष्य की जीविका का भौतिक साधन, उसका भौतिक यश, इन्द्रियतृप्ति तथा आर्थिक विकास उचित तरीके से बने रहने चाहिएँ। भौतिक मामलों में रुचि रखने वाले गृहस्थ का पहला कर्तव्य है कि वह इसका ध्यान रखे। यदि कोई धार्मिक सिद्धान्त किसी की भौतिक दशा को

प्रभावित नहीं करता तो उसे स्वीकार करना चाहिए। इस समय इस कलियुग में यह विचार अत्यन्त प्रधान है। कोई भी व्यक्ति ऐसा धर्म स्वीकार करने को तैयार नहीं है, जो भौतिक सम्पन्नता में बाधक हो। शुक्राचार्य भौतिकतावादी संसारी पुरुष होने के कारण भक्त के सिद्धान्तों को नहीं जानते थे। भक्त भगवान् की पूर्ण तुष्टि के लिए सेवा करने के लिए कृतसंकल्प रहता है। ऐसी कोई भी वस्तु जो इस संकल्प में बाधक बने त्याग कर देनी चाहिए। यही भक्ति का सिद्धान्त है। *आनुकूल्यस्य संकल्प: प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्* (*चैतन्यचरितामृत, मध्य* २२.१००)। भक्ति करने के लिए मनुष्य को केवल वही स्वीकार करना चाहिए जो अनुकूल हो और उसका परित्याग कर देना चाहिए जो प्रतिकूल हो। बलि महाराज को वामनदेव के चरणकमलों पर अपना सर्वस्व अर्पित करने का सुयोग प्राप्त हुआ था, किन्तु शुक्राचार्य इस भक्तियोग में बाधा डालने के लिए भौतिक तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। ऐसी परिस्थिति में बलि महाराज ने निर्णय लिया कि ऐसी बाधाओं से बचा जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उन्होंने तुरन्त ही शुक्राचार्य की राय को अस्वीकार करने और अपना कर्तव्य पालने का निर्णय लिया। इस तरह उन्होंने भगवान् वामनदेव को अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया।

स चाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ।
प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादि: कितवो यथा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह पुरुष; च—भी; अहम्—मैं हूँ; वित्त-लोभेन—धन के लालच से; प्रत्याचक्षे—मैं धोखा दूँ या हाँ कहकर अब ना करूँ; कथम्—कैसे; द्विजम्—ब्राह्मण को; प्रतिश्रुत्य—पहले ही वचन दे चुकने पर; ददामि—कि मैं दूँगा; इति—इस प्रकार; प्राह्लादिः—मैं जो महाराज प्रह्लाद के पौत्र के रूप में प्रसिद्ध हूँ; कितवः—सामान्य ठग; यथा—जिस तरह।

मैं महाराज प्रह्लाद का पौत्र हूँ। जब मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं यह भूमि दान में दूँगा तो फिर धन के लालच से मैं अपने वचन से किस तरह विचलित हो सकता हूँ? मैं किस तरह एक सामान्य वञ्चक का आचरण कर सकता हूँ और वह भी एक ब्राह्मण के प्रति?

तात्पर्य : बलि महाराज को पहले ही उनके पितामह प्रह्लाद महाराज आशीर्वाद दे चुके थे। इसलिए असुर कुल में उत्पन्न होने पर भी वे विशुद्ध भक्त थे। उच्च भक्तों की दो कोटियाँ होती हैं—साधन-सिद्ध तथा कृपासिद्ध। साधनसिद्ध वह है, जो गुरु द्वारा निर्देशित शास्त्रोक्त विधि-विधानों का नियमित पालन करके भक्त बनता है। यदि कोई ऐसी नियमित भक्ति करता है, तो वह कालक्रम में अवश्य ही सिद्धि प्राप्त कर लेगा। किन्तु कुछ ऐसे भी भक्त होते हैं, जो भक्ति के सभी नियमित विधानों का पालन नहीं

किये रहते, किन्तु गुरु तथा कृष्ण की विशेष कृपा से तुरन्त ही शुद्ध भक्ति में सिद्धि प्राप्त किए होते हैं। ऐसे भक्तों के उदाहरण यज्ञपत्नियाँ, महाराज बलि तथा शुकदेव गोस्वामी हैं। यज्ञपत्नियाँ सकामकर्मी सामान्य ब्राह्मणों की पत्नियाँ थीं। यद्यपि ये ब्राह्मण अत्यन्त विद्वान तथा वैदिक ज्ञान में निपुण थे, किन्तु उन्हें कृष्ण-बलराम की कृपा प्राप्त नहीं हो पाई थी जबकि उनकी पत्नियों ने स्त्रियाँ होते हुए भी भक्ति में पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर ली थीं। इसी प्रकार वैरोचनी बलि महाराज को प्रह्लाद महाराज की कृपा प्राप्त थी और प्रह्लाद महाराज की कृपा के बल पर उन्हें भगवान् विष्णु की कृपा भी प्राप्त हो गई थी जो उनके समक्ष ब्रह्मचारी भिक्षुक के रूप में प्रकट हुए। इस प्रकार बलि महाराज कृपासिद्ध बन गए क्योंकि उन पर गुरु तथा कृष्ण दोनों की विशेष कृपादृष्टि थी। चैतन्य महाप्रभु ने इस कृपा की पुष्टि की है—*गुरु कृष्णप्रसादे पाय भक्तिलताबीज* (*चैतन्यचरितामृत, मध्य* १९.१५१)। प्रह्लाद महाराज की कृपा से बलि महाराज को भक्ति का बीज मिला था और जब यह बीज विकसित हुआ तो उन्हें उस सेवा का परम फल अर्थात् ईश्वर-प्रेम भगवान् वामनदेव के तुरन्त प्रकट होने पर मिला हैं (*प्रेमा पुमर्थो महान्*)। बलि महाराज भगवान् की नियमित भक्ति करते थे और चूँकि वे शुद्ध हो चुके थे अतएव भगवान् उनके समक्ष प्रकट हुए। भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम के कारण ही उन्होंने तुरन्त निर्णय लिया कि मैं इस वामन ब्राह्मण को उसका मुँहमाँगा दान दूँगा। यह प्रेम का चिह्न है। इस प्रकार बलि महाराज को *कृपासिद्ध* माना जाता है जिन्होंने भक्ति में उच्चतम सिद्धि विशेष कृपा से प्राप्त की।

न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम् ।
सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; असत्यात्—असत्य से; परः—बढ़कर; अधर्मः—अधर्म; इति—इस प्रकार; ह उवाच—सचमुच कहा है; भूः—माता पृथ्वी ने; इयम्—यह; सर्वम्—सर्वस्व; सोढुम्—सहन करने के लिए; अलम्—मैं समर्थ हूँ; मन्ये—यद्यपि मैं मानता हूँ; ऋते—के अतिरिक्त, सिवाय; अलीक-परम्—अत्यन्त जघन्य झूठा; नरम्—मनुष्य।

असत्य से बढ़कर पापमय कुछ भी नहीं है। इसी कारण से एक बार माता पृथ्वी ने कहा था, ''मैं किसी भी भारी बोझ को सहन कर सकती हूँ, किसी झूठे व्यक्ति को नहीं।''

तात्पर्य : पृथ्वी पर अनेक विशाल पर्वत तथा सागर हैं, जो अत्यन्त भारी हैं और उनको धारण करने में माता पृथ्वी को कोई कठिनाई नहीं होती। किन्तु वह अपने को तब अत्यधिक बोझिल अनुभव करती है जब उसे एक भी लबार (झूठे) व्यक्ति को वहन करना पड़ता है। कहा जाता है कि कलियुग

में असत्य एक सामान्य बात है—*मायैव व्यावहारिके* (*भागवत* १२.२.३)। यहाँ तक कि सामान्य व्यवहार में भी लोग अनेक झूठ बोलने के आदी होते हैं। कोई भी झूठ बोलने के पापफलों से मुक्त नहीं है। ऐसी परिस्थिति में कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि पृथ्वी कितनी बोझिल हो चुकी है! पृथ्वी क्या, सारा ब्रह्माण्ड बोझिल है।

नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ।
न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

न—न तो; अहम्—मैं; बिभेमि—डरता हूँ; निरयात्—नारकीय अवस्था से; न—न तो; अधन्यात्—गरीबी की अवस्था से; असुख-अर्णवात्—दुख रूपी समुद्र से; न—नहीं; स्थान-च्यवनात्—पदच्युत होने से; मृत्योः—मृत्यु से; यथा—जिस तरह; विप्र-प्रलम्भनात्—ब्राह्मण को ठगने से।

मैं नरक, दरिद्रता, दुख रूपी सुमद्र, पदच्युत होने या साक्षात् मृत्यु से उतना नहीं डरता जितना कि एक ब्राह्मण को ठगने से डरता हूँ।

यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्सम्परेतं धनादिकम् ।
तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

यत् यत्—जो कुछ भी; हास्यति—छोड़ेगा; लोके—संसार में; अस्मिन्—इस; सम्परेतम्—पहले से मृत; धन-आदिकम्—उसका धनधान्य; तस्य—ऐसी सम्पत्ति के; त्यागे—त्याग में; निमित्तम्—हेतु; किम्—क्या है; विप्रः—ब्राह्मण जो गुप्त रूप में भगवान् विष्णु है; तुष्येत्—प्रसन्न किया जाना चाहिए; न—नहीं है; तेन—ऐसे धन से; चेत्—काश।

हे प्रभु! आप यह भी देख सकते हैं कि इस संसार का सारा भौतिक ऐश्वर्य उसके स्वामी की मृत्यु के समय निश्चित रूप से विलग हो जाता है। अतएव यदि ब्राह्मण वामनदेव दिये गये उपहारों (दान) से तुष्ट नहीं होते तो क्यों न उन्हें उस धन से तुष्ट कर लिया जाये जो मृत्यु के समय चला जाने वाला है?

तात्पर्य : *विप्र* शब्द का अर्थ ''ब्राह्मण'' होने के साथ-साथ ''गोपनीय'' भी होता है। बलि महाराज ने बिना विचार-विमर्श किये गुप्त रीति से वामनदेव को दान देने का निर्णय लिया था, किन्तु चूँकि ऐसे निर्णय से असुरों तथा उनके गुरु शुक्राचार्य के दिल दुखी होने थे इसलिए उन्होंने अनिश्चित रूप से बात कही। शुद्ध भक्त के रूप में बलि महाराज ने पहले ही भगवान् विष्णु को समस्त भूमि देने का निर्णय कर लिया था।

श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ।
दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७॥

शब्दार्थ

श्रेयः—अत्यधिक महत्त्व के कार्यकलाप; कुर्वन्ति—करते हैं; भूतानाम्—जन सामान्य के; साधवः—सन्त पुरुष; दुस्त्यज—जिनका त्याग पाना कठिन है; असुभिः—अपने प्राणों के द्वारा; दध्यङ्—महाराज दधीचि; शिबि—महाराज शिबि; प्रभृतयः—तथा अन्य महापुरुष; कः—क्या; विकल्पः—सोच-विचार; धरा-आदिषु—ब्राह्मण को भूमि देने में।

दधीचि, शिबि तथा अन्य अनेक महापुरुष जनसाधारण के लाभ हेतु अपने प्राणों तक की आहुति देने के इच्छुक थे। इतिहास इसका साक्षी है। तो फिर इस नगण्य भूमि को क्यों न त्याग दिया जाये? इसके लिए गम्भीर सोच विचार कैसा?

तात्पर्य : बलि महाराज भगवान् विष्णु को सर्वस्व देने के लिए तैयार थे, किन्तु शुक्राचार्य पेशेवर पुरोहित होने के कारण शायद उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे और सन्देह कर रहे थे कि इतिहास में क्या कोई ऐसा साक्ष्य है, जिसमें किसी ने अपना सर्वस्व दान दे दिया हो। किन्तु बलि महाराज ने महाराज शिबि तथा महाराज दधीचि के ठोस उदाहरण प्रस्तुत किये जिन्होंने जनता की भलाई के लिए अपने प्राण दे दिये थे। यह सच है कि मनुष्य में हर भौतिक वस्तु के प्रति, विशेषतया अपनी भूमि के लिए, आसक्ति होती है, किन्तु जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है मृत्यु के समय भूमि तथा अन्य सम्पत्ति बलपूर्वक छीन ली जाती हैं (*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*)। बलि महाराज से उनका सर्वस्व लेने के लिए साक्षात् भगवान् स्वयं प्रकट हुए थे और बलि महाराज परम भाग्यशाली थे कि वे उनका साक्षात् दर्शन कर सके। किन्तु जो अभक्त होते हैं, वे भगवान् का साक्षात् दर्शन नहीं कर पाते। ऐसे व्यक्तियों के लिए भगवान् मृत्यु के रूप में आते हैं और उसका सारा धनधान्य बलपूर्वक छीन लेते हैं। ऐसी दशा में, क्यों न हम अपने धनधान्य से विमुख होकर उसे भगवान् विष्णु को उनकी तुष्टि के लिए समर्पित कर दें? इस प्रसंग में श्री चाणक्य पण्डित का कहना है—*सन्निमित्ते वरं त्यागो विनाशे नियते सति* (*चाणक्य श्लोक ३६*)। चूँकि हमारा धनधान्य सदा नहीं रहने वाला है अपितु किसी न किसी बहाने छीन लिया जायेगा अतएव जब तक वह हमारे पास है, श्रेयस्कर यही होगा कि इसका उपयोग किसी शुभ कार्य के लिए दान देने में किया जाये। अतएव बलि महाराज ने अपने तथाकथित गुरु के आदेश का उल्लंघन किया।

यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः ।
तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

यैः—जिनके द्वारा; इयम्—यह जगत; बुभुजे—भोग किया गया; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ; दैत्य-इन्द्रैः—असुर कुलों में उत्पन्न शूरवीरों तथा राजाओं द्वारा; अनिवर्तिभिः—उनके द्वारा जो लड़कर मरने या विजयी होने के लिए दृढ़संकल्प थे; तेषाम्—ऐसे व्यक्तियों का; कालः—काल ने; अग्रसीत्—हर लिया; लोकान्—सारी सम्पत्ति, भोग की सारी वस्तुओं को; न—नहीं; यशः—यश; अधिगतम्—प्राप्त किया; भुवि—इस जगत में।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! निस्सन्देह, उन महान् असुर राजाओं ने इस संसार का भोग किया है, जो युद्ध करने से कभी भी हिचकिचाते नहीं थे, किन्तु कालान्तर में उनकी कीर्ति के अतिरिक्त उनके पास की हर वस्तु छीन ली गई और वे उसी कीर्ति के बल पर आज भी विद्यमान हैं। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को चाहिए कि सब कुछ छोड़कर सुयश अर्जित करने का प्रयास करे।

तात्पर्य : इस सन्दर्भ में चाणक्य पण्डित भी कहते हैं। (*चाणक्य श्लोक* ३४)—*आयुषः क्षण एकोऽपि न लभ्य स्वर्णकोटिभिः।* मनुष्य की आयु अत्यन्त अल्प है, किन्तु यदि कोई इस अल्प आयु में ऐसा कुछ कर लेता है, जिससे उसका यश बढ़ता है, तो वह लाखों वर्षों तक जीवित रह सकता है। अतएव बलि महाराज ने तय किया कि वे अपने गुरु के इस आदेश का पालन नहीं करेंगे कि वामनदेव को दिये गये वचन से वे विचलित हो जाँय। उल्टे, उन्होंने तय किया कि वे अपने वचन के अनुसार भूमि देंगे जिससे बारह *महाजनों* में उनकी भी गणना सदा होती रहे (*बलिर्वैयासकिर्वयम्*)।

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनिवृत्तास्तनुत्यजः ।
न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सु-लभाः—सहज ही प्राप्त; युधि—युद्धभूमि में; विप्र-ऋषे—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ; हि—निस्सन्देह; अनिवृत्ताः—लड़ने से न डरकर; तनु-त्यजः—इस प्रकार अपना जीवन होम दिया; न—नहीं; तथा—उसी तरह; तीर्थे आयाते—सन्त पुरुषों के आगमन पर, जिनसे तीर्थस्थल बनते हैं; श्रद्धया—श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक; ये—जो; धन-त्यजः—संचित धन को त्याग सकते हैं।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! ऐसे अनेक लोग हैं जिन्होंने युद्ध से न डरकर युद्धभूमि में अपने प्राणों की बलि दे दी है, किन्तु ऐसा अवसर किसी को विरले ही मिला है जब किसी मनुष्य ने अपना संचित धन किसी ऐसे साधु पुरुष को निष्ठापूर्वक दान दिया हो जो तीर्थस्थल को जन्म देता है।

तात्पर्य : अनेक क्षत्रियों ने अपने राष्ट्रों के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी है, किन्तु ऐसा व्यक्ति विरले ही मिलेगा जिसने अपना संचित धन तथा अपनी सारी सम्पत्ति किसी सुपात्र को दान में

दी हो। *भगवद्गीता* (१७.२०) में कहा गया है—

दातव्यं इति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।

देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥

"वह दान सात्त्विक माना जाता है, जो कर्तव्य समझकर उचित समय तथा स्थान में सुपात्र को दिया जाता है और उसके बदले में किसी वस्तु की आशा नहीं की जाती।" इस प्रकार उचित स्थान पर दिया गया दान सात्त्विक कहलाता है। इस सात्त्विक दान से भी बढ़कर वह दिव्य दान है, जिसमें भगवान् के लिए सर्वस्व अर्पित कर दिया जाता है। भगवान् वामनदेव बलि महाराज के पास भिक्षा माँगने आये थे। भला दान देने का ऐसा सुयोग किसे मिल सकता था? अतएव बलि महाराज ने बिना किसी हिचक के भगवान् को मुँहमाँगा दान देने का निर्णय लिया। मनुष्य को युद्धभूमि में जीवन होम करने के अनेक अवसर प्राप्त हो सकते हैं, किन्तु इस प्रकार का अवसर शायद ही किसी को कभी मिलती हो।

मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं
यदर्थिकामोपनयेन दुर्गतिः ।
कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां
ततो वटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

मनस्विनः—अत्यन्त उदार; कारुणिकस्य—अत्यन्त कृपालु पुरुषों का; शोभनम्—अत्यन्त शुभ; यत्—जो; अर्थि—धन के लिए जरूरतमन्द व्यक्तियों का; काम-उपनयेन—इच्छापूर्ति द्वारा; दुर्गतिः—दरिद्रता का मारा; कुतः—क्या; पुनः—फिर; ब्रह्म-विदाम्—ब्रह्मविद्या में पटु पुरुषों का; भवादृशाम्—आप जैसे; ततः—अतएव; वटोः—ब्रह्मचारी का; अस्य—इस वामनदेव; ददामि—दूँगा; वाञ्छितम्—वह जो भी चाहता है।

दान देने से उदार तथा दयालु व्यक्ति निस्सन्देह और अधिक शुभ बन जाता है, विशेषतया जब वह आप जैसे व्यक्ति को दान देता है। ऐसी परिस्थिति में मुझे इस लघु ब्रह्मचारी को उसका मुँहमाँगा दान देना चाहिए।

तात्पर्य : यदि कोई व्यापार, जुआ, वेश्यागमन या नशा करने के कारण धन गँवा देता है और दरिद्र बन जाता है, तो कोई उसकी प्रशंसा नहीं करेगा, किन्तु यदि कोई दान में अपनी सारी सम्पत्ति देकर दरिद्र हो जाता है, तो वह विश्व-वंद्य बन जाता है। इसके अतिरिक्त, यदि कोई उदार तथा दयालु व्यक्ति अच्छे कार्य के लिए अपना सर्वस्व दान करके अपनी दरिद्रता पर गर्व दर्शाता है, तो उसकी दरिद्रता

स्वागत योग्य है और महापुरुष का शुभ लक्षण है। बलि महाराज ने तय किया कि वे वामनदेव को अपना सर्वस्व दान देकर भले ही दरिद्र बन जायें, किन्तु उन्हें यही अभीष्ट होगा।

यजन्ति यज्ञं क्रतुभिर्यमादृता
भवन्त आम्नायविधानकोविदाः ।
स एव विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो
दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

यजन्ति—पूजा करते हैं; यज्ञम्—यज्ञभोक्ता; क्रतुभिः—यज्ञ की विविध सामग्रियों द्वारा; यम्—परम पुरुष को; आदृताः—अत्यन्त आदरपूर्वक; भवन्तः—आप सभी; आम्नाय-विधान-कोविदाः—यज्ञ सम्पन्न करने के वैदिक नियमों से पूर्णतया ज्ञात महान् सन्त पुरुष; सः—वह; एव—निस्सन्देह; विष्णुः—भगवान् विष्णु है; वरदः—या तो वह आशीर्वाद देने के लिए तैयार है; अस्तु—हो जाता है; वा—अथवा; परः—शत्रु रूप में आता है; दास्यामि—दूँगा; अमुष्मै—उसको (विष्णु या वामनदेव को); क्षितिम्—भूमि; ईप्सिताम्—अभीष्ट; मुने—हे मुनि।

हे महामुनि! आप जैसे सन्त महापुरुष जो कर्मकाण्ड तथा यज्ञ सम्पन्न करने के वैदिक सिद्धान्तों से पूर्णतया ज्ञात हैं सभी परिस्थितियों में भगवान् विष्णु की आराधना करते हैं। अतएव वही भगवान् विष्णु यहाँ चाहे मुझे वरदान देने के लिए आये हों या शत्रु के रूप में मुझे दण्ड देने आये हों, मेरा कर्तव्य है कि मैं उनके आदेश का पालन करूँ और बिना हिचक के उनके द्वारा माँगी गई भूमि उन्हें दूँ।

तात्पर्य : जैसाकि शिवजी ने कहा है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।

तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

(*पद्मपुराण*)

यद्यपि *वेदों* में अनेक देवताओं की पूजा करने की संस्तुतियाँ हैं, किन्तु भगवान् विष्णु परम पुरुष हैं और विष्णु-पूजा ही जीवन का चरम लक्ष्य है। *वर्णाश्रम धर्म* के वैदिक सिद्धान्त समाज को संगठित करने के निमित्त थे जिससे प्रत्येक व्यक्ति भगवान् विष्णु की पूजा हेतु तैयार हो सके।

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्।

विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत् तत्तोषकारणम्॥

''वर्ण तथा आश्रम प्रणाली में संस्तुत कर्तव्यों के सही-सही पालन द्वारा भगवान् विष्णु की पूजा

की जाती है। भगवान् को तुष्ट करने का कोई अन्य साधन नहीं है।'' (*विष्णु पुराण* ३.८.९)। अन्ततोगत्वा मनुष्य को भगवान् विष्णु की पूजा करनी चाहिए और इस कार्य के लिए वर्णाश्रम प्रणाली समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी में संगठित करती है। बलि महाराज को उनके पितामह प्रह्लाद महाराज ने भक्ति की समुचित शिक्षा दी थी; अत: वे जानते थे कि क्या करना चाहिए। वे किसी के द्वारा बहकाये नहीं जा सकते थे, यहाँ तक कि अपने तथाकथित गुरु द्वारा भी। यह पूर्ण शरणागति का लक्षण है। भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है—

मारबि राखबि—यो इच्छा तोहारा

नित्य-दास-प्रति तुया अधिकारा

भगवान् विष्णु की शरण में जाकर मनुष्य को हर परिस्थिति में उनके आदेशों का पालन करने के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए, चाहे वे किसी को मारें या शरण दें। भगवान् विष्णु की पूजा हर परिस्थिति में की जानी चाहिए।

यद्यप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ।
तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यद्यपि—यद्यपि; असौ—भगवान् विष्णु; अधर्मेण—छल से; माम्—मुझको; बध्नीयात्—मारते हैं; अनागसम्—यद्यपि मैं पापी नहीं हूँ; तथापि—फिर भी; एनम्—उनके विरुद्ध; न—नहीं; हिंसिष्ये—बदला लूँगा; भीतम्—क्योंकि वे भयभीत हैं; ब्रह्म-तनुम्—ब्राह्मण ब्रह्मचारी का वेश धारण करके; रिपुम्—भले ही वे मेरे शत्रु हों।

यद्यपि वे साक्षात् विष्णु हैं, किन्तु भयवश उन्होंने मेरे पास भिक्षा माँगने आने के लिए ब्राह्मण का वेश धारण कर रखा है। ऐसी परिस्थिति में जब उन्होंने ब्राह्मण रूप धारण कर रखा है, तो वे चाहे अधर्म द्वारा मुझे बन्दी बनाते हैं या मेरा वध भी कर देते हैं तब भी मैं उनसे बदला नहीं लूँगा यद्यपि वे मेरे शत्रु हैं।

तात्पर्य : यदि भगवान् विष्णु जिस रूप में हैं उसी में बलि महाराज के पास आये होते और उन्होंने उनसे कुछ करने को कहा होता तो यह निश्चित है कि बलि महाराज उनकी प्रार्थना को अस्वीकार न करते। लेकिन अपने तथा अपने भक्त के बीच कुछ परिहास हेतु भगवान् ने ब्राह्मण- ब्रह्मचारी का रूप धारण किया और वे बलि महाराज से केवल तीन पग भूमि माँगने आये।

एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ।
हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥ १३॥

शब्दार्थ

एषः—यह (ब्रह्मचारी); वा—अथवा; उत्तम-श्लोकः—भगवान् विष्णु जिनकी पूजा वैदिक स्तुतियों से की जाती है; न—नहीं; जिहासति—त्यागना चाहता है; यत्—क्योंकि; यशः—यश; हत्वा—मारकर; मा—मुझको; एनाम्—इस भूमि; हरेत्—ले लेगा; युद्धे—युद्ध में; शयीत—लेट जायेगा; निहतः—मारा जाकर; मया—मेरे द्वारा।

यदि यह ब्राह्मण वास्तव में भगवान् विष्णु है, जिसकी पूजा वैदिक स्तुतियों द्वारा की जाती है, तो वह अपने सर्वव्यापक यश को कभी नहीं छोड़ेगा; वह या तो मेरे द्वारा मारा जाकर लेट जायेगा या युद्ध में मेरा वध कर देगा।

तात्पर्य : बलि महाराज के इस कथन कि विष्णु मारा जाकर लेट जायेगा सीधा अर्थ नहीं लेना चाहिए क्योंकि विष्णु किसी के द्वारा मारे नहीं जा सकते। वे सबको मार सकते हैं, किन्तु स्वयं नहीं मारे जा सकते। अतएव लेट जाने का वास्तविक अर्थ है कि भगवान् विष्णु बलि महाराज के हृदय में निवास करेंगे। भगवान् विष्णु भक्ति द्वारा भक्त से हारते हैं अन्यथा कोई उन्हें हरा नहीं सकता।

श्रीशुक उवाच
एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ।
शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; अश्रद्धितम्—गुरु के आदेश का आदर न करने वाले; शिष्यम्—शिष्य को; अनादेश-करम्—जो अपने गुरु के आदेश का पालन करने को तैयार न था; गुरुः—गुरु (शुक्राचार्य) ने; शशाप—शाप दिया; दैव-प्रहितः—भगवान् से प्रेरित होकर; सत्य-सन्धम्—जो सत्य पर अडिग थे; मनस्विनम्—जिसका चरित्र अत्युच्च था, सच्चरित्र।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : तत्पश्चात् भगवान् से प्रेरित होकर गुरु शुक्राचार्य ने अपने उच्च शिष्य बलि महाराज को शाप दे दिया जो इतने उदार एवं सत्यनिष्ठ थे कि अपने गुरु के आदेशों को मानने की बजाये उनकी आज्ञा का उल्लघंन करना चाह रहे थे।

तात्पर्य : बलि महाराज तथा उनके गुरु शुक्राचार्य के आचरण में यही अन्तर था कि बलि महाराज में तो पहले से ही ईश-प्रेम विकसित हो चुका था, किन्तु नैत्यिक कर्मकाण्ड के पुरोहित मात्र होने के कारण शुक्राचार्य में ऐसा नहीं हो पाया था। इस प्रकार शुक्राचार्य को भगवान् से कभी प्रेरणा नहीं मिली कि भक्ति विकसित करे। *भगवद्गीता* (१०.१०) में स्वयं भगवान् ने कहा है—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

''जो लोग निरन्तर भक्ति करते हैं और प्रेमपूर्वक मेरी पूजा करते हैं उन्हें मैं ज्ञान देता हूँ जिससे वे मेरे पास आ सकते हैं।''

जो भक्तगण सचमुच श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक भक्ति में लगे रहते हैं उन्हें भगवान् प्रेरित करते हैं। वैष्णवजन कभी भी कर्मकाण्डी स्मार्त ब्राह्मणों की परवाह नहीं करते। इसीलिए श्रील सनातन गोस्वामी ने वैष्णवों के मार्गदर्शन के लिए जो स्मार्त विधि का कभी पालन नहीं करते। *हरि-भक्तिविलास* का संग्रह किया है। यद्यपि भगवान् जन-जन के हृदय में वास करते हैं, किन्तु जब तक कोई वैष्णव नहीं होता और जब तक वह भक्ति में निरत नहीं होता तब तक उसे सही उपदेश प्राप्त नहीं हो पाता जिससे वह भगवद्धाम वापस जा सके। ऐसे उपदेश केवल भक्तों के निमित्त होते हैं। अतएव इस श्लोक में *दैव-प्रहित:* शब्द महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है ''भगवान् द्वारा प्रेरित होकर।'' शुक्राचार्य को चाहिए था कि वे बलि महाराज को प्रोत्साहित करते कि वे भगवान् विष्णु को सर्वस्व दे दें; यह भगवत्-प्रेम का लक्षण होता किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उल्टे, उन्होंने अपने भक्त—शिष्य को शाप देकर दण्डित करना चाहा।

दृढं पण्डितमान्यज्ञ: स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ।
मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रश्यसे श्रिय: ॥ १५॥

शब्दार्थ

दृढम्—तुम अपने निर्णय में इतने दृढ़ हो; पण्डित-मानी—अपने को अत्यधिक विद्वान मानने वाले; अज्ञ:—मूर्ख; स्तब्ध:—धृष्ट, ऊद्धत; असि—हो गये हो; अस्मत्—हम सबकी; उपेक्षया—उपेक्षा करके; मत्-शासन-अतिग:—मेरे शासन की सीमा का अतिक्रमण करते हुए; य:—ऐसा व्यक्ति (जैसे तुम); त्वम्—तुम; अचिरात्—शीघ्र ही; भ्रश्यसे—नीचे गिर जाओगे; श्रिय:—सारे ऐश्वर्य से।

यद्यपि तुम्हें कोई ज्ञान नहीं है फिर भी तुम तथाकथित विद्वान पुरुष बन गये हो; और इतने धृष्ट होकर तुम मेरे आदेश का उल्लंघन करने का दुस्साहस कर रहे हो। मेरी आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण तुम शीघ्र ही सारे ऐश्वर्य से विहीन हो जाओगे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि बलि महाराज *पण्डितमानी* नहीं थे अर्थात् अपने को झूठमूठ विद्वान नहीं समझते थे अपितु वे *पण्डित-मान्य-ज्ञ:* थे अर्थात् इतने पण्डित थे कि अन्य सारे पण्डित उनकी पूजा करते थे। चूँकि वे इतने पण्डित थे इसीलिए वे अपने तथाकथित गुरु के

आदेश का उल्लंघन कर सके। उन्हें संसार से किसी प्रकार की भौतिकता का भय नहीं था। जिसकी परवाह भगवान् विष्णु करते हों उसे किसी अन्य की परवाह करने की आवश्यकता नहीं होती। इस तरह बलि महाराज कभी भी समस्त ऐश्वर्य से वंचित नहीं हो सके। भगवान् द्वारा प्रदत्त ऐश्वर्य की तुलना कर्मकाण्ड से प्राप्त ऐश्वर्य से नहीं की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, यदि कोई भक्त अत्यन्त ऐश्वर्यवान् हो जाये तो यह समझना चाहिए कि उसका ऐश्वर्य भगवान् का उपहार है। ऐसा ऐश्वर्य कभी नष्ट नहीं होगा जबकि सकाम कर्म द्वारा अर्जित ऐश्वर्य कभी भी नष्ट हो सकता है।

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ।
वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार से; शप्तः—शापित होकर; स्व-गुरुणा—अपने ही गुरु द्वारा; सत्यात्—सत्य से; न—नहीं; चलितः—चलायमान; महान्—महापुरुष; वामनाय—वामनदेव को; ददौ—दान में दे दिया; एनाम्—सारी भूमि; अर्चित्वा—पूजा करके; उदक-पूर्वकम्—पहले जल अर्पित करके।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : अपने गुरु द्वारा इस प्रकार शापित होने पर भी महापुरुष होने के नाते बलि महाराज अपने संकल्प से टले नहीं। अतएव प्रथा के अनुसार उन्होंने सर्वप्रथम वामनदेव को जल अर्पित किया और तब उन्हें वह भूमि भेंट की जिसके लिए वे वचन दे चुके थे।

विन्ध्यावलिस्तदागत्य पत्नी जालकमालिनी ।
आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

विन्ध्यावलिः—विन्ध्यावलि; तदा—उस समय; आगत्य—वहाँ आकर; पत्नी—महाराज बलि की पत्नी; जालक-मालिनी—मोतियों की माला से सुसज्जित; आनिन्ये—ले आई; कलशम्—जलपात्र; हैमम्—सोने का; अवनेजनि-अपाम्—भगवान् के चरण धोने के लिए जल से युक्त; भृतम्—भरा हुआ।

बलि महाराज की पत्नी विध्यावलि जो गले में मोतियों की माला पहने थीं वहाँ पर तुरन्त आईं और भगवान् के चरणकमलों को धोकर उनकी पूजा करने के निमित्त अपने साथ पानी से भरा सोने का एक बड़ा जलपात्र लेती आईं।

यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ।
अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

यजमानः—पूजा करने वाला (बलि महाराज); स्वयम्—स्वयम्; तस्य—वामनदेव के; श्रीमत् पाद-युगम्—शुभ एवं सुन्दर चरणकमल युगुल; मुदा—प्रसन्नतापूर्वक; अवनिज्य—ठीक से धोकर; अवहत्—चढ़ाया; मूर्ध्नि—सिर पर; तत्—वह; अपः—जल; विश्व-पावनीः—सारे संसार को मुक्ति देने वाला।

वामनदेव की पूजा करने वाले बलि महाराज ने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् के चरणकमलों को धोया; फिर उस जल को अपने सिर पर चढ़ाया क्योंकि वह जल सम्पूर्ण विश्व का उद्धार करता है।

तदासुरेन्द्रं दिवि देवतागणा
गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ।
तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं
प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदान्विताः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; असुर-इन्द्रम्—असुरों के राजा बलि महाराज को; दिवि—स्वर्गलोक में; देवता-गणाः—देवता लोग; गन्धर्व—गन्धर्वगण; विद्याधर—विद्याधर; सिद्ध—सिद्धलोक के वासी; चारणाः—चारण लोक के वासी; तत्—उस; कर्म—काम; सर्वे अपि—सारे के सारे; गृणन्तः—घोषित करते हुए; आर्जवम्—सरल; प्रसून-वर्षैः—फूलों की वर्षा से; ववृषुः—वर्षा की; मुदा-अन्विताः—उससे परम प्रसन्न होकर।

उस समय स्वर्गलोक के निवासी—यथा देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध तथा चारण सभी—बलि महाराज के इस सरल द्वैतरहित कार्य से परम प्रसन्न हुए और उन्होंने उनके गुणों की प्रशंसा की तथा उन पर लाखों फूल बरसाये।

तात्पर्य : *आर्जवम्* अर्थात् सरलता या द्वैत से रहित होना ब्राह्मण तथा वैष्णव का गुण है। वैष्णव को स्वतः ब्राह्मण के सारे गुण प्राप्त हो जाते हैं—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः

(*भागवत* ५.१८.१२)

वैष्णव में ब्राह्मण के सारे गुण—यथा सत्य, शम, दम, तितिक्षा तथा आर्जव होने चाहिए। वैष्णव के आचरण में दोगलापन नहीं हो सकता। जब बलि महाराज ने अचल श्रद्धा तथा भक्ति के साथ भगवान् विष्णु के चरणकमलों की सेवा की तो स्वर्गलोक के समस्त वासियों ने इस कार्य की परम प्रशंसा की।

नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो
गन्धर्वकिम्पूरुषकिन्नरा जगुः ।
मनस्विनानेन कृतं सुदुष्करं
विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्त्रयम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

नेदुः—बजने लगीं; मुहुः—पुनः पुनः; दुन्दुभयः—दुन्दुभियाँ; सहस्रशः—हजारों; गन्धर्व—गन्धर्वलोक के वासी; किम्पूरुष—किम्पुरुष लोक के वासी; किन्नराः—किन्नर लोक के वासी; जगुः—गाने लगे; मनस्विना—अत्यन्त पूज्य व्यक्ति के द्वारा; अनेन—बलि महाराज द्वारा; कृतम्—किया गया; सु-दुष्करम्—अत्यन्त कठिन कार्य; विद्वान्—विद्वान होने के कारण; अदात्—दान दिया; यत्—जो; रिपवे—शत्रु को, बलि महाराज के शत्रु देवताओं का पक्ष लेने वाले विष्णु को; जगत्-त्रयम्—तीनों लोक।

गन्धर्वों, किम्पुरुषों तथा किन्नरों ने पुनः पुनः हजारों दुन्दुभियाँ बजाईं और परम प्रसन्न होकर गाना शुरू किया, ''बलि महाराज कितने महान् पुरुष हैं और उन्होंने कितना कठिन कार्य सम्पन्न किया है। यद्यपि वे जानते थे कि भगवान् विष्णु उनके शत्रुओं के पक्ष में हैं, तो भी उन्होंने भगवान् को दान में सम्पूर्ण तीनों लोक दे दिये।''

तद्वामनं रूपमवर्धताद्भुतं
हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ।
भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधय-
स्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तत्—वह; वामनम्—भगवान् वामन का अवतार; रूपम्—रूप; अवर्धत—बढ़ने लगा; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; हरेः—भगवान् का; अनन्तस्य—अनन्त का; गुण-त्रय-आत्मकम्—जिनका शरीर तीन गुणों से युक्त भौतिक शक्ति द्वारा विस्तारित है; भूः—भूमि; खम्—आकाश; दिशः—सभी दिशाएँ; द्यौः—लोक; विवराः—ब्रह्माण्ड के विभिन्न छिद्र; पयोधयः—महान् सागर; तिर्यक्—निम्न पशु, पक्षी; नृ—मनुष्य; देवाः—देवता; ऋषयः—ऋषिगण; यत्—जिसमें; आसत—निवास करते थे।

तब अनन्त भगवान्, जिन्होंने वामन का रूप धारण कर रखा था, भौतिक शक्ति की दृष्टि से आकार में बढ़ने लगे यहाँ तक कि ब्रह्माण्ड की सारी वस्तुएँ जिनमें पृथ्वी, अन्य लोक, आकाश, दिशाएँ, ब्रह्माण्ड के विभिन्न छिद्र, समुद्र, पक्षी, पशु, मनुष्य, देवता तथा ऋषिगण सम्मिलित थे, उनके शरीर के भीतर समा गये।

तात्पर्य : बलि महाराज वामनदेव को दान देना चाह रहे थे, किन्तु भगवान् ने अपने शरीर का ऐसा विस्तार किया कि बलि यह देख लें कि इस ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु पहले से ही भगवान् के शरीर में है। वस्तुतः कोई भी व्यक्ति भगवान् को कुछ भी नहीं दे सकता क्योंकि वे प्रत्येक वस्तु से पूर्ण हैं। कभी-कभी कोई भक्त गंगानदी को गंगाजल अर्पित करते देखा जाता है। वह गंगा में स्नान करने के

बाद अंजुली में गंगा-जल भरकर गंगा को वापस अर्पित करता है। वस्तुत: जब कोई गंगा से एक अंजुली जल लेता है, तो गंगा का कुछ घटता नहीं। इसी प्रकार जब कोई भक्त गंगा में एक अंजुली जल डालता है, तो उससे गंगाजी में कोई वृद्धि नहीं होती। किन्तु ऐसे अर्पण से भक्त माता गंगा का भक्त बनने का यज्ञ प्राप्त करता है। इसी प्रकार जब हम श्रद्धा तथा भक्ति के साथ कोई वस्तु अर्पित करते हैं, तो अर्पित की गई वस्तु न तो हमारी होती है न ही इससे भगवान् के ऐश्वर्य में कोई वृद्धि होती है। किन्तु यदि कोई मनुष्य अपना सब कुछ अर्पित करता है, तो वह भक्त के रूप में मान्य हो जाता है। इस सम्बन्ध में यह उदाहरण दिया जाता है कि यदि कोई अपने मुखमण्डल को माला तथा चन्दन के लेप से सजाकर दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखे तो उसके चेहरे का प्रतिबिम्ब अपने आप सुन्दर लगने लगता है। हर वस्तु के मूल स्रोत भगवान् हैं, जो हमारे भी आदि स्रोत हैं। अतएव जब भगवान् को सजाया जाता है, तो भक्त तथा सारे जीव स्वत: सज जाते हैं।

काये बलिस्तस्य महाविभूते:
सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ।
ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके
भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

काये—शरीर में; बलि:—महाराज बलि; तस्य—भगवान् का; महा-विभूते:—समस्त अद्भुत ऐश्वर्यों से युक्त पुरुष का; सह-ऋत्विक्-आचार्य-सदस्य:—समस्त पुरोहितों, आचार्यों तथा उस पवित्र सभा के सदस्यों सहित; एतत्—यह; ददर्श—देखा; विश्वम्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड; त्रि-गुणम्—तीन गुणों वाले; गुण-आत्मके—ऐसे समस्त गुणों के स्रोत में; भूत—भौतिक तत्त्वों समेत; इन्द्रिय—इन्द्रियाँ; अर्थ—इन्द्रिय-विषयों सहित; आशय—मन, बुद्धि तथा अहंकार सहित; जीव-युक्तम्—समस्त जीवों के सहित।

बलि महाराज ने अपने समस्त पुरोहितों, आचार्यों तथा सभा के सदस्यों सहित भगवान् के विश्वरूप को देखा जो षड्ऐश्वर्यों से युक्त था। उस शरीर में ब्रह्माण्ड की सारी वस्तुएँ विद्यमान थीं—सारे भौतिक तत्त्व, इन्द्रियाँ, इन्द्रिय-विषय, मन, बुद्धि, अहंकार, विविध जीव तथा प्रकृति के तीनों गुणों के कर्म तथा उनके फल।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं—*अहं सर्वस्य प्रभवो मत्त: सर्वं प्रवर्तते*—कृष्ण हर वस्तु के उद्गम हैं। *वासुदेव: सर्वमिति*—कृष्ण सर्वस्व हैं। *मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित:*—सभी वस्तुएँ भगवान् के शरीर में विद्यमान हैं फिर भी भगवान् सर्वत्र नहीं हैं। मायावादी चिन्तक सोचते हैं

कि चूँकि भगवान् परब्रह्म सब कुछ हो गए हैं इसलिए उनका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। उनका दर्शन *अद्वैतवाद* कहलाता है। किन्तु वास्तव में उनका दर्शन सही नहीं है। यहाँ पर बलि महाराज भगवान् के विराट रूप के द्रष्टा थे और वह शरीर दिख रहा था। यह द्वैतवाद है। सद दो प्राणी होते हैं—एक द्रष्टा और दूसरा दृश्य। द्रष्टा, पूर्ण का अंश होता है, किन्तु वह पूर्ण के तुल्य नहीं होता। पूर्ण का अंश, द्रष्टा पूर्ण से अभिन्न होता है, किन्तु अंश होने के कारण यह कभी पूर्ण नहीं हो सकता। यह अचिन्त्य जिसका प्रतिपादन भेदाभेद पूर्ण दर्शन भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा हुआ है।

रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ पादयो-
र्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः ।
पतत्त्रिणो जानुनि विश्वमूर्ते-
रूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

रसाम्—अधोलोक; अचष्ट—देखा; अङ्घ्रि-तले—पाँव के नीचे, तलवे के नीचे; अथ—तत्पश्चात्; पादयोः—पाँवों पर; महीम्—भूमि को; महीध्रान्—पर्वतों को; पुरुषस्य—विराट पुरुष की; जङ्घयोः—पिंडलियों में; पतत्त्रिणः—उड़ने वाले जीव; जानुनि—घुटनों पर; विश्व-मूर्तेः—विराट भगवान् के रूप का; ऊर्वोः—जाँघों पर; गणम् मारुतम्—वायु के प्रकार; इन्द्र-सेनः—बलि महाराज जिसे इन्द्र के सिपाही मिल गये थे और जो इन्द्र पद पर आसीन थे।

तत्पश्चात् राजा इन्द्र के आसन पर आसीन बलि महाराज ने अधोलोकों को, यथा रसातल को, भगवान् के विराट रूप के पाँव के तलवों पर देखा। उन्होंने भगवान् के पाँवों पर पृथ्वी को, पिंडलियों पर सारे पर्वतों को, घुटनों पर विविध पक्षियों को तथा जाँघों पर वायु के विभिन्न प्रकारों (मरुद्गण) को देखा।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् के विराट रूप की पूर्ण रचना के प्रसंग में विश्व की स्थिति का वर्णन है। इस विराट रूप का अध्ययन तलवों से शुरू होता है। तलवों के ऊपर पैर, पैर दों के ऊपर पिंडलियाँ तथा पिंडलियों के ऊपर घुटने तथा घुटनों के ऊपर जाँघें होती हैं। इस तरह विराट शरीर के सारे अंगों का एक-एक करके वर्णन हुआ है। घुटनों पर पक्षियों का स्थान है और उसके ऊपर मरुद्गण हैं। पक्षी पर्वतों के ऊपर उड़ सकते हैं और पक्षियों के ऊपर वायु के विविध प्रकार होते हैं।

सन्ध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्
प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान् ।
नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धू-

नुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सन्ध्याम्—शाम; विभोः—परमेश्वर के; वाससि—वस्त्र में; गुह्ये—गुप्तांगों में; ऐक्षत्—उसने देखा; प्रजापतीन्—विभिन्न प्रजापतियों को, जिन्होंने सारे जीवों को जन्म दिया; जघने—कूल्हों पर; आत्म-मुख्यान्—बलि महाराज के विश्वस्त मंत्रियों; नाभ्याम्—नाभि पर; नभः—पूरा आकाश; कुक्षिषु—कमर में; सप्त—सात; सिन्धून्—समुद्रों के; उरुक्रमस्य—भगवान् के जो अद्भुत कार्य कर रहे थे; उरसि—वक्षस्थल पर; च—भी; ऋक्ष-मालाम्—तारों का समूह।

बलि महाराज ने अद्भुत कार्य करने वाले भगवान् के वस्त्रों के नीचे संध्या देखी, उनके गुप्तांगों में प्रजापतियों को देखा और उनके कटि प्रदेश के गोल भाग में उन्होंने अपने को तथा अपने विश्वस्त पार्षदों को देखा। उन्होंने भगवान् की नाभि में आकाश, कमर में सातों समुद्र तथा उनके वक्षस्थल में तारों के सारे समूह देखे।

हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारे-
ऋृतं च सत्यं च मनस्यथेन्दुम् ।
श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां
कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५॥
इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु
तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ।
केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकाया-
मक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥ २६॥
वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं
भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ।
अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो
मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥ २७॥
स्पर्शे च कामं नृप रेतसाम्भः
पृष्ठे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ।
छायासु मृत्युं हसिते च मायां
तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २८॥
नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु
बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ।
प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि
सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥ २९॥

शब्दार्थ

हृदि—हृदय के भीतर; अङ्ग—हे राजा परीक्षित; धर्मम्—धर्म के; स्तनयोः—स्तनों पर; मुरारेः—मुरारि के; ऋतम्—अत्यन्त मधुर शब्द; च—भी; सत्यम्—सत्य को; च—भी; मनसि—मन में; अथ—तत्पश्चात्; इन्दुम्—चन्द्रमा को; श्रियम्—लक्ष्मी को; च—भी; वक्षसि—छाती पर; अरविन्द-हस्ताम्—अपने हाथ में सदैव कमल धारण करने वाली; कण्ठे—गले में; च—भी; सामानि—सारे वेद (साम, यजुर्, ऋक् तथा अथर्व); समस्त-रेफान्—सारी ध्वनियों को; इन्द्र-प्रधानान्—इन्द्र आदि को;

अमरान्—सारे देवताओं को; भुजेषु—भुजाओं पर; तत्-कर्णयोः—कानों पर; ककुभः—सारी दिशाएँ; द्यौः च—तथा ज्योतिष्क; मूर्ध्नि—सिर के ऊपर; केशेषु—बालों में; मेघान्—बादलों को; श्वसनम्—श्वास; नासिकायाम्—नथुनों पर; अक्ष्णोः च—आँखों में; सूर्यम्—सूर्य को; वदने—मुख में; च—भी; वह्निम्—आग को; वाण्याम्—वाणी में; च—भी; छन्दांसि—वैदिक स्तुतियाँ; रसे—जीभ में; जल-ईशम्—जल के देवता को; भ्रुवोः—भौंहों पर; निषेधम्—चेतावनी; च—भी; विधिम्—विधि-विधान; च—भी; पक्ष्मसु—पलकों में; अहः च—दिन; रात्रिम्—रात; च—भी; परस्य—परम; पुंसः—पुरुष का; मन्युम्—क्रोध को; ललाटे—मस्तक पर; अधरे—होठों पर; एव—निस्सन्देह; लोभम्—लालच; स्पर्शे—स्पर्श में; च—भी; कामम्—कामेच्छाएँ; नृप—हे राजा; रेतसा—वीर्य से; अम्भः—जल; पृष्ठे—पीठ पर; तु—लेकिन; अधर्मम्—अधर्म को; क्रमणेषु—अद्भुत कार्यों में; यज्ञम्—अग्नि यज्ञ को; छायासु—छाया में; मृत्युम्—मृत्यु को; हसिते—हँसी में; च—भी; मायाम्—माया को; तनू-रुहेषु—शरीर के बालों पर; ओषधि-जातयः—ओषधियों की सारी किस्में; च—तथा; नदीः—नदियों को; च—भी; नाडीषु—नाड़ियों में; शिलाः—चट्टानें; नखेषु—नाखूनों में; बुद्धौ—बुद्धि में; अजम्—ब्रह्मा को; देव-गणान्—देवताओं को; ऋषीन् च—तथा ऋषियों को; प्राणेषु—इन्द्रियों में; गात्रे—शरीर में; स्थिर-जङ्गमानि—जड़ तथा चेतन को; सर्वाणि—सारे; भूतानि—जीवों को; ददर्श—देखा; वीरः—बलि महाराज ने।

हे राजा! उन्होंने भगवान् मुरारि के हृदय में धर्म, वक्षस्थल पर मधुर शब्द तथा सत्य, मन में चन्द्रमा, वक्षस्थल पर हाथ में कमल पुष्प लिए लक्ष्मीजी, गले में सारे वेद तथा सारी शब्द ध्वनियां, बाहुओं में इन्द्र इत्यादि सारे देवता, दोनों कानों में सारी दिशाएँ, सिर पर उच्चलोक, बालों में बादल, नथुनों में वायु, आँखों में सूर्य और मुख में अग्नि को देखा। उनके शब्दों से सारे वैदिक मंत्र निकल रहे थे, उनकी जीभ पर जलदेवता वरुणदेव थे, उनकी भौहों पर विधि-विधान तथा उनकी पलकों पर दिन-रात थे (आँखें खुली रहने पर दिन और बन्द होने पर रात्रि)। उनके मस्तक पर क्रोध और उनके होठों पर लालच था। हे राजा! उनके स्पर्श में कामेच्छाएँ, उनके वीर्य में सारे जल, उनकी पीठ पर अधर्म, उनके अद्भुत कार्यों या पगों में यज्ञ की अग्नि थी। उनकी छाया में मृत्यु, उनकी मुस्कान में माया थी और उनके शरीर के सारे बालों पर ओषधियाँ तथा लताएँ थीं। उनकी नाड़ियों में सारी नदियाँ, उनके नाखूनों में सारे पत्थर, उनकी बुद्धि में ब्रह्माजी, देवता तथा महान् ऋषिगण और उनके सारे शरीर तथा इन्द्रियों में सारे जड़ तथा चेतन जीव थे। इस प्रकार बलि महाराज ने भगवान् के विराट शरीर में प्रत्येक वस्तु को देखा।

सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य
सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग ।
सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो
धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

सर्व-आत्मनि—परम पूर्ण या भगवान् में; इदम्—यह ब्रह्माण्ड; भुवनम्—तीनों लोक; निरीक्ष्य—देखकर; सर्वे—सभी; असुराः—असुर, बलि महाराज के पार्षद; कश्मलम्—विलाप; आपुः—प्राप्त किया; अङ्ग—हे राजा; सुदर्शनम्—सुदर्शन नामक; चक्रम्—चक्र; असह्य—न सहा जाने योग्य; तेजः—ताप; धनुः च—तथा धनुष; शार्ङ्गम्—शार्ङ्ग नामक; स्तनयित्नु—घिरे हुए बादलों की ध्वनि; घोषम्—की तरह ध्वनि करती।

हे राजा! जब महाराज बलि के समस्त असुर अनुयायियों ने भगवान् के विराट रूप को देखा, जिन्होंने अपने शरीर के भीतर सब कुछ समा लिया था, और जब उन्होंने भगवान् के हाथ में सुदर्शन नामक चक्र को देखा जो असह्य ताप उत्पन्न करता है और जब उन्होंने उनके धनुष की कोलाहलपूर्ण ध्वनि सुनी तो इन सब के कारण उनके हृदयों में विषाद उत्पन्न हो गया।

पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः
कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ।
विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्त-
स्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

पर्जन्य-घोषः—बादलों जैसी गर्जन; जलजः—भगवान् का शंख; पाञ्चजन्यः—पाञ्चजन्य नामक; कौमोदकी—कौमोदकी नामक; विष्णु-गदा—विष्णु की गदा; तरस्विनी—अत्यन्त वेगवान्; विद्याधरः—विद्याधर नामक; असिः—तलवार; शत-चन्द्र-युक्तः—सैकड़ों चन्द्रमाओं से अलंकृत ढाल; तूण-उत्तमौ—श्रेष्ठ तरकस; अक्षयसायकौ—अक्षयसायक नामक; च—भी।

बादल की सी ध्वनि करने वाला भगवान् का पाञ्चजन्य नामक शंख, अत्यन्त वेगवान् कौमोदकी नामक गदा, विद्याधर नामक तलवार, सैकड़ों चन्द्रमा जैसे चिह्नों से अलंकृत ढाल एवं तरकसों में सर्वश्रेष्ठ अक्षयसायक—ये सभी भगवान् की स्तुति करने के लिए एक साथ प्रकट हुए।

सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं
पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ।
स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डलः
श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥ ३२ ॥
मधुव्रतस्रग्वनमालयावृतो
रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ।
क्षितिं पदैकेन बलेर्विचक्रमे
नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

सुनन्द-मुख्याः—सुनन्द आदि भगवान् के पार्षद; उपतस्थुः—स्तुति करने लगे; ईशम्—भगवान् की; पार्षद-मुख्याः—अन्य प्रमुख पार्षद; सह-लोक-पालाः—समस्त लोकों के प्रधान देवों सहित; स्फुरत्-किरीट—चमकीले मुकुट सहित; अङ्गद—बाजूबन्द; मीन-कुण्डलः—तथा मछली के आकार के कुण्डल; श्रीवत्स—उनके वक्षस्थल पर श्रीवत्स नामक बाल; रत्न-

उत्तम—श्रेष्ठ रत्न (कौस्तुभ); मेखला—पेटी; अम्बरैः—पीत वस्त्र सहित; मधु-व्रत—भौंरों का; स्रक्—माला; वनमालया—फूलों की माला से; आवृतः—ढका; रराज—प्रकट; राजन्—हे राजा; भगवान्—भगवान्; उरुक्रमः—अपने अद्भुत कार्यों से प्रत्यक्ष; क्षितिम्—सारे विश्व को; पदा एकेन—एक ही पग से; बलेः—बलि महाराज के; विचक्रमे—ढक लिया; नभः—आकाश; शरीरेण—अपने शरीर से; दिशः च—तथा सारी दिशाएँ; बाहुभिः—अपनी भुजाओं से।

सुनन्द तथा अन्य प्रमुख पार्षदों के साथ-साथ विभिन्न लोकों के प्रधान देवों ने भगवान् की स्तुति की जो चमकीला मुकुट, बाजूबन्द तथा चमकदार मकराकृत कुण्डल पहने हुए थे। भगवान् के वक्षस्थल पर श्रीवत्स नामक बालों का गुच्छा और दिव्य कौस्तुभ मणि थे। वे पीतवस्त्र पहने थे जिसके ऊपर कमर की पेटी बंधी थी। वे फूलों की माला से सज्जित थे जिसके चारों ओर भौंरे मँडरा रहे थे। हे राजा! इस प्रकार अपने आपको प्रकट करते हुए अद्भुत कार्यकलापों वाले भगवान् ने अपने एक पग से सम्पूर्ण पृथ्वी को, अपने शरीर से आकाश को और अपनी भुजाओं से समस्त दिशाओं को ढक लिया।

तात्पर्य : कोई तर्क कर सकता है; जब बलि महाराज ने वामनदेव को उनके पगों द्वारा नापी गई भूमि देने का वचन दिया था, तो भगवान् वामनदेव ने आकाश को क्यों घेर लिया? इस प्रसंग में श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि पग के अन्तर्गत ऊपर तथा नीचे का सारा क्षेत्र सम्मिलित रहता है। जब कोई खड़ा होता है, तो वह निश्चित रूप से आकाश का कुछ भाग और अपने पगों के नीचे भूमि की कुछ मात्रा घेरता है। अतएव जब भगवान् ने अपने शरीर से समस्त आकाश को घेर लिया तो उनके लिए कोई असामान्य बात नहीं थी।

पदं द्वितीयं क्रमतस्त्रिविष्टपं
न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ।
उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो
महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

पदम्—पग; द्वितीयम्—दूसरा; क्रमतः—आगे बढ़ाकर; त्रि-विष्टपम्—सारा स्वर्गलोक; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; तृतीयाय—तीसरे पग के लिए; तदीयम्—भगवान् के; अणु अपि—भूमि का एक कण भी शेष बचा; उरुक्रमस्य—असामान्य कार्य करने वाले भगवान् का; अङ्घ्रिः—ऊपर तथा नीचे घेरने वाले पग; उपरि उपरि—ऊपर और उससे भी ऊपर; अथो—अब; महः-जनाभ्याम्—महर्लोक तथा जनलोक से भी; तपसः—तपोलोक; परम्—उससे भी परे; गतः—पहुँच गया।

जब भगवान् ने अपना दूसरा पग भरा तो उसमें सारे स्वर्गलोक आ गये। अब तीसरे पग के लिए रंचमात्र भी भूमि न बची क्योंकि भगवान् का पग महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, यहाँ तक कि सत्यलोक से भी ऊपर तक फैल गया।

तात्पर्य : जब भगवान् का पग महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक सहित सारे लोकों की ऊँचाई से भी ऊपर चला गया तो उनके नाखून निश्चित रूप से ब्रह्माण्ड के आवरण में घुस गये। यह ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों (*भूमिरापोऽनलो वायुः खम्*) से आच्छादित है। जैसाकि शास्त्रों में कहा गया है ये तत्त्व सतहों (स्तरों) के रूप में हैं और प्रत्येक सतह पिछली सतह से दस गुना मोटी होती जाती है। फिर भी भगवान् के नाखून इन सभी सतहों को बेध गये और ब्रह्मलोक में उन नाखूनों ने एक छेद बना दिया। इसी छेद से गंगा का पानी छनकर इस जगत में आया। इसीलिए कहा जाता है— *पदनखनीरजनितजनपावन* (*दशावतार स्तोत्र* ५)। चूँकि भगवान् ने ब्रह्माण्ड के आवरण में एक छेद कर दिया इसलिए पतितात्माओं के उद्धार हेतु गंगाजल इस जगत में आया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कंध के अन्तर्गत ''बलि महाराज द्वारा ब्रह्माण्ड समर्पण'' नामक बीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।